मुस्लिम समाज जेंडर एवं राज्य

डॉ. जेनब बानू

भारत में लगभग 6 करोड़ मुस्लिम महिलाएं हैं जो विश्व की सबसे बड़ी मुस्लिम महिला जनसंख्या है। अफसोस कि पिछले पांच दशक में हुए सामाजिक एवं आर्थिक विकास का लाभ इन मुस्लिम महिलाओं तक नहीं के बराबर पहुंचा है। सरकारी एवं गैर सरकारी सेवाओं राजनीतिक पदों, विश्वविद्यालयों एवं अन्य व्यवसायिक संगठनों में इनकी अनुपस्थिति इसको दर्शाती है।

सर्वत्र चल रही बहस—महिला सबलीकरण, महिला गरीब, महिला हिंसा एवं महिलाओं के साथ कार्य स्थान पर ज़्यादतियों में मुस्लिम महिलाओं का कहीं उल्लेख नहीं है।[1] मुस्लिम महिलाओं का पिछड़ापन अल्पसंख्यक अधिकार बनाम तुष्टीकरण; पर्सनल ला बनाम नागरिक संहिता, धर्म निरपेक्षता बनाम सांप्रदायिकता और आधुनिकता बनाम परंपरावाद के विवाद में उलझकर रह गया है।

स्वतंत्र भारत के संविधान में नागरिक समानता को स्थापित किया गया है तथा समानता का मौलिक अधिकार बिना किसी लिंग, जाति, संप्रदाय में पक्षपात के प्रदान किया गया है। दुर्भाग्य से राष्ट्र की राजनीति व्यवस्था में जब जेंडर

न्याय का सवाल उठता है तो वह एकरूपता बनाम बहुरूपता, राज्य बनाम समुदाय के विरोधाभास में अटक जाता है। विशेषकर शादी, ब्याह, तलाक, विरासत एवं अन्य पारिवारिक मामलों में जब कभी किसी स्त्री के साथ अन्याय होता है तब उसका समाधान कानून के समान संरक्षण से न किया जाकर समुदाय अथवा जाति विशेष में प्रचलित रीतियों एवं परंपराओं से किया जाता है। मुस्लिम महिलाएं इस प्रकार मुस्लिम पर्सनल ला के भंवर में फंस जाती है।

भारतीय फौजदारी कानूनों (आई.पी.सी.) से प्राप्त संरक्षण मुस्लिम महिलाओं को उपलब्ध नहीं हो सकता है। शाह बानू मामला इसका प्रमाण है। जब 1985 में सर्वोच्च न्यायालय ने तलाकशुदा शाह बानू को आई.पी.सी. धारा 125 के तहत जीवनपर्यंत या दूसरा विवाह होने तक पति से भरण पोषण प्राप्त करने का निर्णय सुनाया तो कट्टरतावादी मुस्लिम समाज में भूचाल आ गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी महिला हितों के पैरोकार थे, ने धार्मिक कट्टरतावाद के सामने घुटने टेक दिए और मुस्लिम महिला (तलाक अधिकार संरक्षण विधेयक) पारित करा दिया। इस विधेयक के पास होने के बाद फिर से यथास्थिति बरकरार हो गई। अर्थात् मुस्लिम महिला केवल इद्दत की मुद्दत तक ही पति से भरण पोषण पा सकती है उसके बाद नहीं।

संसद में उक्त विधेयक पर चली बहस में दो बातें उभरकर सामने आई। एक बहुलवाद धर्मनिरपेक्षता की पहचान है। धर्म निरपेक्ष राज्य में सभी को एक ही लाठी से नहीं हांका जा सकता। विविध सांस्कृतिक समुदायों को अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान के साथ जीने की स्वतंत्रता है। राज्य इस दिशा में सहिष्णु बनकर ही विविधता में एकता स्थापित कर सकता है। (लोकसभा बहस--1986, 313) दो मुस्लिम पर्सनल ला की बुनियाद शरियत कानून है। शरियत कानून मुसलमानों के विश्वास के अनुरूप ईश्वरीय कानून है जिसे बदला नहीं जा सकता। अतः मुस्लिम महिला (तलाक अधिकार संरक्षण) विधेयक द्वारा पुनः शरीयत कानून को उस सीमा तक बहाल किया गया जिस सीमा तक सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से अवहेलना हुई थी। (लोकसभा बहस 1986 : 319)। यह स्थिति, मुस्लिम कट्टरपंथ के लिए उर्वरा जीवन साबित हुई। धार्मिकता पर आधारित मुस्लिम सांस्कृतिक पहचान पर जोर दिए जाने से एक तरफ मुल्लावाद को शह मिली वहीं दूसरी तरफ मुस्लिम महिलाओं की स्थिति बद से और बदतर हो गई।[2]

वास्तविकता यह नहीं थी कि बेसहारा तलाकशुदा महिला को भरण-पोषण दे देने जैसे सूक्ष्म सुधार से मुस्लिम पर्सनल ला आहत् हो जाता है। हकीकत यह थी कि वोटों की राजनीति के चलते नाराज मुस्लिम वोट बैंक पर पुनः कब्जा करने के लिए कांग्रेस सरकार ने मुल्ला मौलवियों को प्रसन्न करने की कोशिश की और मज़लूम मुस्लिम महिला हितों की बली चढ़ा दी।

आज महिला सबलीकरण के जमाने में भी मुस्लिम महिला देश की नागरिक होने के नाते उन सभी अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का उपभोग नहीं कर सकती हैं जो संविधान से उसे मिले हैं। पर्सनल ला के नाम पर कहीं वह पर्दे की कैद में है, तो कहीं दूसरी, तीसरी एवं चौथी बीवी बनी हुई है, कहीं तीन तलाक के शाप से ग्रसित है तो कहीं अपने स्वास्थ्य की परवाह किए बिना बच्चे पैदा करने की मशीन बनी हुई है, तो कहीं मौलवियों के फतवों की तपिश से मानसिक रूप से आहत है। गुड़िया के रूप उसे पुनः पूर्व पति के पास लौटने को विवश होना पड़ा है, तो इमराना के रूप में बलात्कारी सुसर को भावी पति एवं अपने बच्चों के बाप अर्थात् पति को अपना स्वयं का बेटा मानने जैसे शरीयती फतवा का प्रकोप झेलना पड़ा है। उपरोक्त सभी का प्रभाव मुस्लिम महिला "ह्मन इंडेक्स" पर पड़ा है। ह्मन इंडेक्स में मुस्लिम महिलाओं की हालत राष्ट्रीय औसत से पीछे है। जैसे—कार्य सहभागी दर (डब्लयु.पी.आर.) मुस्लिम महिलाओं में मात्र 9.6 प्रतिशत है

जो राष्ट्रीय दर 19.3 प्रतिशत से लगभग आधी है।

मुस्लिम महिला साक्षरता[3] 42.23 प्रतिशत है जबकि राष्ट्रीय महिला साक्षरता दर 59.5 प्रतिशत है। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रीय आय हिंदुओं में (अनुसूचित जाति एवं जनजाति सहित) 4,514 रुपए (1999 के हुमन डेवलपमेंट रिपोर्ट) के मुकाबले मुसलमानों में 3,678 रुपए तथा इसाइयों में 5,920 रुपए है। गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों की आबादी (%) हिंदुओं, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों सहित 39 है वहां मुसलमानों में 43 और ईसाई में 27 प्रतिशत है।[4]

हाल ही राजेंद्र सच्चर समिति[5] की बैठक राजस्थान राज्य के जयपुर में मुसलमानों की शैक्षणिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति जानने हेतु हुई थी। राज्य के विभिन्न जिलों से लोगों को बुलाया गया और उनकी समस्याओं को सुना गया। एक पूरा सत्र महिला स्थिति और समस्याओं पर भी था। मुझे भी इसमें सम्मिलित होने का अवसर मिला। स्थिति के सामने मुस्लिम महिलाओं ने जिस तरह अपनी व्यथाओं को सुनाया, सभी समिति सदस्य स्तब्ध रह गए। समिति ने अपनी रिपोर्ट में भी रेखांकित किया है कि राजस्थान में मुस्लिम महिलाओं का सामाजिक एवं आर्थिक विकास निर्बलतम है। महिला शिक्षा की दृष्टि से प्रतिशत 15 से 20 के बीच है तथा गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों की संख्या बहुत अधिक है। इन्हें सार्वजनिक वितरण प्रणाली से केरोसिन एवं अन्य खाद्य सामग्री बराबर उपलब्ध नहीं होती। पर्दे की कैद लागू है। जनसंख्या नियंत्रण की तरफ सजग नहीं है और मस्जिदों के मौलवियों के फतवों के अनुरूप जिंदगी जीते हैं। सांप्रदायिक तनावों से इनमें असुरक्षा की भावना पैदा हुई है। भीलवाड़ा जिले में हुए तनाव के बाद मुसलमान परिवार वहां से घर-बार छोड़ने को मजबूर हो गए हैं।

मुस्लिम महिलाओं की दयनीय स्थिति का निदान स्वयं मुस्लिम महिलाओं में जागृति पैदा करना है। उन्हें समझाना है कि उनकी इस हालत के लिए धर्म एवं कुरआनी शिक्षा जिम्मेदार नहीं है। कुरान ने तो महिलाओं के साथ न्याय करने की पूरी वकालत की है। उदाहरणार्थ कुरान में औरतों को चारदीवारी में कैद रखने की बात तो दूर, कहीं यह भी नहीं कहा है कि औरतों को अपनी आजीविका कमाने का हक नहीं है। कुरान की आयत 4 : 32 में औरतों को आजीविका कमाने की मान्यता दी गई है। इसमें कहा गया है कि "मर्द जो कमाता है उसका लाभ उसके लिए है, और औरत जो कमाती है उसका लाभ उसके लिए है।" अगर औरत कमा नहीं सकती या बाहर काम नहीं कर सकती तो उसका लाभ उसे मिलने का सवाल ही पैदा नहीं होता। परंतु परंपरावादी इस्लामिक विचारक यह मानते हैं कि "औरतों का असली कर्तव्य बच्चे पालना, अपने मर्द की सेवा करना और घर की देखभाल करना है। शायद इसी के आधार पर वे औरतों को इजाज़त नहीं देते कि वह घर से बाहर निकले और काम करें।"[6]

मुस्लिम महिला शाह बानू फैसले तक बेजुबान रही, और कुरान में प्रतिपादित जेंडर आधारित न्याय की मांग नहीं कर पाई। तब नारीवादियों ने भी खुलकर इनका समर्थन नहीं किया। परंतु 1986 के शाहबानू फैसले के बाद बेजुबानों को जुबान मिली है और वे कुरआनी हकूकों एवं संवैधानिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए हरकत में आई है। अनेक मुस्लिम महिला संगठन वजूद में आए हैं जैसे—मुस्लिम वूमेंस फोरम, आवाजे निसवा, दुखतराने मिल्लत और हाल ही में महिला पर्सनल ला बोर्ड अस्तित्व में आया है। फिर भी सामाजिक न्याय की मंजिल दूर है। सच्ची लगन और हिम्मत से आगे बढ़ा जा सकता है अगर राज्य भी इस दिशा में सक्रिय भूमिका निभाए। मुस्लिम महिलाओं में प्रचलित अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण एवं पिछड़ापन अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बराबर है या न्यूनाधिक है। राज्य इन दलित वर्गों के उत्थान के लिए विशेष कार्यक्रमों की घोषणा समय-समय पर करता है परंतु मुसलमान एवं मुस्लिम महिलाओं के लिए सेवा विशेष पैकेज कभी लाया गया हो, सुनने में नहीं आया।[7]

अतः राज्य को इस ओर पहल करनी चाहिए।

मुसलमान समुदाय में स्वयं मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों को संरक्षित करने के लिए आंदोलन चलाया जाए जिससे यह आभास न हो कि मुस्लिम पर्सनल ला में बाहर से संशोधन थोपा गया है। नारीवादियों तथा राष्ट्रीय महिला आयोग को भी मुस्लिम महिलाओं को अपने साथ जोड़ राष्ट्रीय महिला मुख्यधारा में लाने के प्रयास करने चाहिएं तभी भींचे होंठ हिलेंगे और जेंडर न्याय स्थापित होगा।

संदर्भ

1. *जोया हसन, 'रिलीजन एंड पॉलिटिक्स इन ए सेकूलर स्टेट: ला कंयुनिटी एंड जेंडर', से जोया हसन (संपादित) पालिटिक्स एंड द स्टेट इन इंडिया, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2002 पृष्ठ सं. 271*
2. *सैयदा सैयदीन हमीद : 'माइ वाइस शेल बी हीयरड', मुस्लिम वूमेन इन इंडिया 2003, मुस्लिम वूमेंस फोरम नई दिल्ली, पृष्ठ 10*
3. *पैगंबर मोहम्मद साहब (स.अ.) ने स्त्री-पुरुष दोनों के लिए शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य ठहराया है। आपका मशहूर कौल है 'तलबो इल्म फरिज़तुन अला कुल्ले मुस्लिमनों मुस्लि मातुन; अफसोस के मोहम्मद साहब के इस कौल के मदरसों में दीनी तालीम तक महदूद कर दिया है इसीलिए शिक्षा का ग्राफ उठ नहीं पाता है।*
4. *सन् 1990 में नेशनल काउंसिल ऑफ एपलाइड रिसर्च ने संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से ग्रामीण भारतीय समाज की स्थिति पर एक विस्तृत सर्वेक्षण करवाया था। एकत्रित आंकड़ों को 'इंडिया : हुमन डेवलपमेंट रिपोर्ट' शीर्षक के अंतर्गत आबू सालेह शरीफ के संपादन में सन् 1999 में नई दिल्ली से प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक से विभिन्न आर्थिक वर्गों के साथ-साथ धार्मिक व जाति के समुदाय से संबंधित आंकड़े भी प्रस्तुत किए। निम्नलिखित आंकड़े इसी से लिए गए हैं।*

विवरण	हिंदू (अनुसूचित जाति तथा अनु. जनजाति सहित)	अनु. जाति	अनु. जनजाति	मुसलमान	ईसाई
राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय रुपयों में	4,514	3,505	3,237	3,678	5,920
राष्ट्रीय प्रति परिवार आय	25, 713	17,465	19,556	22807	—
गरीबी रेखा के नीचे आबादी (%)	39	51	50	43	27
साक्षरता दर 7 वर्ष से ऊपर (%)	53	39	42	49	51
बिजली उपयोग करने वाले परिवार (%)	43	30	31	30	60
वितरित जल तक परिवार की पहुंच (%)	25	17	23	19	28
सार्वजनिक वितरण प्रणाली तक परिवारों की पहुंच	34	38	32	22	—
कार्य साझेदारी दर (W.P.R.)					
पुरुष	52.3	52.8	51.6	48.0	66
महिला	19.3	23.0	27.7	9.6	—

5. राजेंद्र सच्चर समिति प्रधानमंत्री हाई पावर कमेटी है जिन्हें देश में मुसलमानों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन कर रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया गया है। यह समिति सभी राज्यों का दौरा करेगी। 22-25 अगस्त 2005 को राजस्थान दौरा किया।

6. असगर अली इंजीनियर, कुरान में औरतों का दर्जा, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक स्टडीज, मुंबई, 1985 पृ. 38

7. लड़कियों के शादी के मामले में समाज कल्याण विभाग के ताजे निर्णय के तहत सहयोग योजना में अनुदान केवल बी.पी.एल., (एस.सी.) को ही मिलेगा।अल्पसंख्यक आयोग ने समाज कल्याण विभाग को पत्र लिखकर सहयोग योजना में अल्पसंख्यक समुदाय के बी.पी.एल. परिवारों को भी सम्मिलित करने का आग्रह किया था जिसे ठुकरा दिया गया है। इससे पहले समाज कल्याण द्वारा चलाई जा रही पालनहार योजना का लाभ भी अनुसूचित जाति के बच्चों तक ही सीमित था। राजस्थान में अल्प संख्यक आयोग समाज कल्याण विभाग के अंतर्गत आता है।
